एक सहज यात्रा, जारी है...

पवनकुमार गुप्त

गीता में एक श्लोक है जिसमें कहा गया है 'कर्म करते जाओ, परिणाम की चिंता व्यर्थ है'। अरसे से सुनते आए इसको, पर बहुत देर बाद इसके अर्थ का अनुभव हुआ। कहने के अर्थ को मैंने ऐसे समझा कि हमारा सिर्फ करने तक अधिकार है, करने का निर्णय हम (कुछ हद तक ही) ले सकते हैं; करना हमारे वश में है, अधिकार में है, पर उस करने से जो (परिणाम) निकलेगा उस पर हमारा अधिकार नहीं है। अधिकार का अर्थ कि वह (परिणाम) हमारे वश में नहीं है या नहीं होता। क्योंकि कुछ भी होने (परिणाम) में बहुत सारे घटकों (दृश्य और अदृश्य, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष) की भागीदारी होती है। बहुत सारे घटकों के योग-संयोग से होना (परिणाम) घटित होता है। यह समझ ही वस्तुतः मनुष्य को अहंकार से मुक्ति की राह देती है। मैं (ऐसा या वैसा) करके एक खास परिणाम ले आऊँगा - यही मूल अहंकार है।

'सिद्ध' भी हुआ। अनायास, बिना किसी योजना के। सिर्फ एक धूमिल सा उद्देश्य उसके पीछे रहा होगा।..... .....'सिद्ध' का विकास भी सहज भाव से होते रहा। शरीर से बहुत बड़ा नहीं हुआ पर विचार और अनुभव में उसकी गति काफी तीव्र रही।

आधुनिक इंसान अनिश्चितता से बहुत घबराता है, सब कुछ निश्चित करने की जुगत में रहता है। समस्त आधुनिक विज्ञान और प्रोजेक्ट प्लैनिंग इसी में लगे रहती है। पर धीरे धीरे समझ में आया कि हमारी (भारतीय) भाषाओं, परम्पराओं और जीवन शैली में इस अनिश्चितता को अंगीकार किया गया। हमारी भाषाएँ 'होने' वाली भाषाएँ हैं। यहाँ सब कुछ होता है, 'हाथ जलता है', 'जन्म और मृत्यु होती है', 'शादी होती है' इत्यादि । हम (भाषा में) 'करते' नहीं हैं। यूरोप से निकली हुई भाषाओं में सब कुछ किया जाता है। 'doing' का सेंस होता हैं उन भाषाओं में, हमारे यहाँ 'होने' का। हम करते हैं, पर होने (परिणाम) में और भी बहुत सारे घटकों का योगदान होता है।

'सिद्ध' भी हुआ। अनायास, बिना किसी योजना के। सिर्फ एक धूमिल सा उद्देश्य उसके पीछे रहा होगा। इस धूमिल से उद्देश्य के पीछे एक सहजता और एक बच्चे जैसा भोलापन रहा। और संभवतः इसी बीज की वजह से, इसी विरासत में मिले गुण की वजह से, 'सिद्ध' का विकास भी सहज भाव से होते रहा। शरीर से बहुत बड़ा नहीं हुआ पर विचार और अनुभव में उसकी गति काफी तीव्र रही। शोध, अवलोकन और सहज बातचीत से नए-नए कार्यक्रम निकलते गए और सिद्ध का हिस्सा बनते गए।

'सिद्ध' का जन्म यूं तो 1989 में हुआ। 1991 में भारत ने आर्थिक रूप से आधुनिक पश्चिमी दुनिया के साथ चलने के लिए अपने दरवाजे खोल दिये। इसी के आस-पास विश्व बैंक ने हमें एक प्रोजेक्ट लेने का न्यौता दिया और हम उसे जब समझे, तो उसे नकार दिया। संभवतः उस समय उत्तराखंड में 'सिद्ध' ही एकमात्र संस्था थी जिसने उस प्रलोभन को ठुकराया। और इस योजना ने हमें सोचने विचार करने को प्रोत्साहित किया। हमारा पहला बड़ा वैचारिक पड़ाव मैं 1996 के आसपास मानता हूँ जब हमने कौसानी के 'अनासक्ति आश्रम' में 'Rethinking the new economic order: Gandhi and beyond' नाम से एक सेमिनार किया, हफ्ते भर का। उसमें किशन जी (पटनायक) आए, सुनील सहस्त्रबुद्धे आए और आए CSDS के धीरू भाई शेठ। यह अपने आप में एक साहसिक कदम था। इस तरह के सेमिनार एक-आधा दिनों के होते हैं, सप्ताह भर के नहीं। पहले दिन के आखिर में लगा सभा तो खत्म प्रायः हो गई है। सबने (मैंने और तीनों मेहमानों ने) अपनी अपनी बात कह दी थी। अब बाकी के 6 दिन क्या होगा? पर दूसरे दिन से चमत्कार होना शुरू हुआ और होते ही चला गया। सेमीनारों में अक्सर ऊपर-ऊपर की खोखली विद्वता भरी बातें होती हैं। उसमे असल कम और दिखावा, दूसरों को प्रभावित 'प्रेरित से अलग' करने की कला का उपयोग ज्यादा होता है। पर यहाँ कौसानी में कुछ ऐसा घटा कि लोगों ने ईमानदारी और authentic (खालिस) बातें, दिल से करनी शुरू कीं। और उसका जोरदार असर हम सब पर हुआ। यह 'सिद्ध' के लिए एक turning point जैसा अनुभव था। उसके तुरंत बाद ही यह फैसला हुआ कि हम अपने को शिक्षा के क्षेत्र तक ही सीमित रखेंगे। काम बहुत से करने जैसे हैं पर हमारी सीमाएं हैं और समाज में सार्थक परिवर्तन दो ही कामों से आ सकते हैं - राजनीति और शिक्षा। उस समय हमने धर्म के बारे में अधिक नहीं सोचा। खैर, राजनीति हमें करनी नहीं थी तो अपने को शिक्षा में समेट लिया। बहुत सारे प्रोजेक्ट और पैसे लौटाये गए। लोग नाराज भी हुए पर हम अपने निर्णय पर कायम रहे। और आज भी मुझे उसकी खुशी है।

.....'अनासक्ति आश्रम' में 'Rethinking the new economic order: Gandhi and beyond'..... .....यह 'सिद्ध' के लिए एक turning point जैसा अनुभव था। उसके तुरंत बाद ही यह फैसला हुआ कि हम अपने को शिक्षा के क्षेत्र तक ही सीमित रखेंगे।.....

हमें बहुत सारे प्रोजेक्ट मिले पर जिन कामों से हमें दिशा मिली और हमारे साथियों का बौद्धिक विकास हुआ, हमें समझ मिली वे एक तरह से प्रोजेक्टों के दायरे से बाहर वाले काम और घटनाएँ ही ज्यादा थीं। इस क्रम में तीन चार जबरदस्त गोष्ठियाँ ध्यान में आती हैं - महिलाओं के मुद्दे, कितने अपने कितने पराये, 'the philosophy and politics

of modern science and technology*, 'स्थानीयता और क्षेत्रीयता'। इनमें धर्मपाल जी, किशन (पटनायक) जी, श्रद्धेय सैमडोंग रींपोचे जी, धीरु भाई शेठ, सुनील सहस्त्रबुद्धे, राधा बहन, इत्यादि मनीषियों ने हमारा हमेशा साथ दिया और बड़ी ईमानदारी से शिरकत की, जिसका 'सिद्ध' के विकास में एक बड़ा योगदान रहा। इसके अलावा 'हिमालय रैबार' के जरिये भी हमें प्रेरणा मिलती रही। और फिर उन अद्‌भुत शोधों को कौन भूल सकता है - "Matter of Quality", "Child and Family", और 'Text and Context' (अप्रकाशित) इन सभी का 'सिद्ध' की यात्रा और समझ में एक बड़ा योगदान रहा।

'सिद्ध' की यात्रा की शुरुआत एक तरह से ग्रामीण बुजुर्ग महिलाओं ने जब ये कहा कि 'पढ़ा लिखा कर आपके स्कूल हमें बर्बाद कर रहे हैं' या 'बच्चों को 'होना' सिखाओ, दिखना/दिखाना नहीं, से शुरू हुई। बाकी सब बातें वहीं से शुरू हुई। और उस कड़ी को आगे ले गए श्रद्धेय धर्मपाल जी, जिन्होंने न सिर्फ इन बातों की गहराई हमें समझाई बल्कि महात्मा गांधी की रूह से हमें आमने-सामने करवाया। अपने सहज तरीके से वो हमें कितना कुछ दे गए, इसका मूल्यांकन करना मेरे बूते के बाहर है। उनसे मिलना और फिर उनका सानिध्य पाना कोई दैवी कृपा से ही हुआ, मैं मानता हूँ। 10 वर्ष के उनके सानिध्य में 'सिद्ध' ने और मैंने कितना काम किया यह कल्पना में भी अब नहीं बैठता।

हमारी समझ में जैसे-जैसे इजाफा होते गया हमने अपने काम में नए आयाम जोड़े, कुछ पुराना छोड़ा, नया जोड़ा। इसी क्रम में दान-दाता एजेंसियों की राजनीति और तरीके भी समझ आए, उनके बदलते चरित्र से भी पहचान हुई।

'सिद्ध' ने कभी भी प्रोजेक्ट के तरीके से काम नहीं किया और वापस मुड़ के देखने पर यह एक अच्छी बात ही लगती है। हमारी समझ में जैसे-जैसे इजाफा होते गया हमने अपने काम में नए आयाम जोड़े, कुछ पुराना छोड़ा, नया जोड़ा। इसी क्रम में दान-दाता एजेंसियों की राजनीति और तरीके भी समझ आए, उनके बदलते चरित्र से भी पहचान हुई। '90' के दशक के आखिर तक उनका स्वरूप काफी बदलने लगा था और हमें परेशानी होने लगी थी। इस क्रम में 'सिद्ध' ने काफी पैसे लौटाए भी क्योंकि मूल रूप से उनकी बुनियादी बातों से हमारी सहमति नहीं थी। इस पर कई लोग - अंदर और बाहर - काफी अचंभा भी करते थे, पर हमें कभी अपने फैसले पर शंका नहीं हुई। हमारा बल अपनी सोच पर विश्वास और जिन लोगों को हम श्रद्धा की नजर से देखते थे (चाहे वो धर्मपाल हों, किशन जी हों, रींपोचे जी हों या बाद में श्रद्धेय नागराज जी हों या फिर मित्र मंडली के गणेश बगड़िया या रण सिंह हों), हमें अपने निर्णय और एकाकीपन में, इन सब का सहयोग मिलते रहा। 'सिद्ध' में हम कभी भी मुख्य

धारा से मेल नहीं बैठा पाये। और इसका हरजाना देना पड़ता है जो हमने लगातार दिया। पर संबल मिला अपने अनुभव, विश्वास और ईमानदार और सच्चे विद्वान मित्रों और मार्गदर्शकों से।

'सिद्ध' में गोष्ठियों, सेमीनारों और शोध का हमेशा ही एक बड़ा हाथ रहा, हमारी समझ को बढ़ाने में। पिछले 4-5 वर्षों में भी भारतीय भाषाओं पर हुई गोष्ठी और फिर तीन मर्तबा 'भारतीय परम्पराओं में शिक्षा की समझ' पर लगातार हुई गोष्ठियों ने हमारी समझ में इजाफा किया। भारतीय परम्पराओं को समझने हेतु तीन गोष्ठियाँ श्रद्धेय सैमदोंग रींपोचे जी के संरक्षण और आशीर्वाद से आयोजित की गई। इनमें बौद्ध, जैन, हिन्दू परम्पराओं के अलावा ईसाई और मुस्लिम परम्पराओं के लोगों ने भी हिस्सा लिया। इसके अलावा आधुनिक परम्पराओं से - श्री ओरोबिंदो, कृष्णमूर्ति, महात्मा गांधी, रामकृष्ण मिशन एवं गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शांति निकेतन - से भी लोग आए। यहाँ तक कि आयुर्वेद, कत्थक एवं ध्रुपद शैली के जानकार लोगों ने भी इन गोष्ठियों में अपनी परंपरा की शैली में शिक्षण पद्धति पर अपनी-अपनी बात रखी। इनके अलावा रींपोचे जी से लगातार गोष्ठियों एवं संवाद के जरिये आधुनिकता को समझा जाता रहा। श्री रवीद्र शर्मा जी (आदिलाबाद) से लगातार संवाद कायम है - भारतीय ग्राम्य एवं जाति व्यवस्था को ठीक से समझने के लिए, जिससे कई महत्वपूर्ण सूत्र भी हाथ लगे हैं। इसके अलावा व्यवस्था और डिजाइन पर भी एक दो संवाद हुए जो का महत्व के रहे।

शोध और गोष्ठियों के अलावा जो महत्वपूर्ण कार्यक्रम 'सिद्ध' में हुए उनमें 'संजीवनी', 'सन्मति', और 'बोधशाला' विशेष महत्व रखते हैं। 'बोधशाला' में तो वो सब होने लगा जिसकी हम कल्पना करते थे। हाथों का काम, समन्वित और लचीलापन लिए हुए पढ़ाई, और साथ-साथ आधुनिकता के झांसों को, बाजार के व्यापार को पढ़ाई के साथ सशक्त चुनौती।

'सिद्ध' ने बहुत सारे युवानों को गहरे से छुआ, यह अनुमान नहीं, अनुभव और प्रमाण के आधार पर कहा जा रहा है। ये युवा वो तो थे ही जो कार्यकर्ता के रूप में बरसों साथ काम किए और जो 'संजीवनी' और 'सन्मती' जैसे कार्यक्रमों में भाग लिए, पर वे भी जो यदा कदा 'सिद्ध' आते जाते रहे। उनमें से कई एक अभी भी संपर्क रखते हैं, कुछ लोग यहाँ वहाँ मिल जाते हैं, तो यहाँ हुए काम की सार्थकता के प्रमाण मिलते हैं।

जमाना तेजी से बदल रहा है जिसमें व्यक्ति की स्वतन्त्रता नहीं के बराबर रह गई है। आर्थिक तरक्की 'पैसा और आधुनिक जीवन शैली ही जिसके प्रमाण के रूप में देखे जा रहे हैं' ही 'अच्छे' जीवन का सूचक होता जा रहा है। हम हर चीज के लिए दूसरों पर, सरकार और बाजार पर आश्रित होते जा रहे हैं। स्वावलंबन शब्द भर रह गया है। हर अच्छी नौकरी कर रहा इंसान अपने को स्वावलंबी 'मान' रहा है। पढ़े लिखे वर्ग 'ज्यादा या कम' के विचार अपने नहीं होते, वे मीडिया बनाती है पर उसे 'लगता' है कि उसी के विचार हैं।

दिमाग और शरीर दोनों गिरफ्त में हैं और व्यक्ति अपनी मस्ती में झूम रहा है! इस बात की समझ 'सिद्ध' में बहुत पहले ही आ गई थी पर मुख्य धारा का प्रभाव (दबाव) बहुत मजबूत होता है, उसका वेग तेज होता है। इस बहाव में 'सिद्ध' ने अच्छे-अच्छों को बहते देखा है - अपनों को भी और परायों को भी। और यह तमाशा चलता भी रहेगा। इस वेग को समझना और विचलित न होना ही जीवन की समझ है। रींपोचे जी से एक महत्वपूर्ण भेद समझ आया। एक बार हफ्ते भर उनके सानिध्य में बिताने का मौका लगा था। सिर्फ हम दो ही थे। दिन भर एकांत में ध्यान आदि की प्रक्रिया और सुबह शाम 1-2 घंटे की चर्चा। आधुनिकता, स्वयंभू, हिंसक और हर समय नए (जो असल में होता नहीं) की तलाश, आस्था विहीन होती है यह समझ आया। उनसे मैंने पूछा था 'आपको अगले 30-50 साल की दुनिया कैसी दिखती है?' उन्होने कहा था 'मुझे निकट भविष्य में कोई उम्मीद नहीं दिखती, मैं निराश हूं। मुझे लगा जो व्यक्ति इतनी बेबाकी से अपने को निराश कहता है, वो भी आज के positivity के जमाने में, और साथ ही इतना सक्रिय है, तो क्या ये विरोधाभास नहीं? फिर प्रोफेसर सरन, जो रींपोचे जी के मित्र रहे हैं और एक सच्चे और विलक्षण विद्वान 'जिनकी आज के जमाने में भीषण कमी है' की किताब का ख्याल आया। hope 'आशा' eternal 'सनातन' है, hope का faith 'अटूट आस्था' से गहरा रिश्ता है। तो बात समझ आई निराशा और हताशा में फर्क है। निराशा के अपने कर्तव्य होते हैं, काम करते जाओ, अपनी समझ के अनुसार, गुरुदेव रवि बाबू का 'एक्ला चोलो रे...' भी यही बात कहता है, परिणाम पर तुम्हारा अधिकार नहीं।

दिमाग और शरीर दोनों गिरफ्त में हैं और व्यक्ति अपनी मस्ती में झूम रहा है! इस बात की समझ 'सिद्ध' में बहुत पहले ही आ गई थी पर मुख्य धारा का प्रभाव (दबाव) बहुत मजबूत होता है, उसका वेग तेज होता है। इस बहाव में 'सिद्ध' ने अच्छे-अच्छों को बहते देखा है - अपनों को भी और परायों को भी।

'सिद्ध' कृतज्ञ है और रहेगा अपने मार्गदर्शकों और सहयोगियों का।

सहजता और ईमानदारी (authenticity) की तलाश में...

पवनकुमार गुप्त

मसूरी

अप्रैल २०, २०१७

नवमी, वैशाख कृष्ण पक्ष २०७४